॥ ओं खम्ब्रह्म ॥

काशीशास्त्रार्थः ॥

—*—

...ीत्

जो संवत् १९२६ में स्वामी दयानन्द सरस्वती और काशी के स्वामी विशुद्धानन्द बालशास्त्री आदि पण्डितों के बीच दुर्गाकुंड के समीप आनंदबाग में हुआ था सो

दूसरी वार

मुंशी समर्थदान के प्रबन्ध से वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में छप के प्रकाशित हुआ ॥

संवत् १९३९ माघ शु०

दूसरी बार १००० पुस्तक छपे।

मूल्य ।)

1647

आर्य समाज नागौर (मारवा...)

अधि० संख्या १४३४
विषय
दिनांक

पुस्तक संख्या
३६८

॥ भूमिका ॥

—–✻—–

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ मि० कार्त्तिक सुदि १२ मंगलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वती" जी का काशीस्थ "स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती" तथा "बालशास्त्री" आदि पण्डितों के साथ हुआथा) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं इस संवाद में स्वामी जी का पक्ष पाषाण-मूर्त्तिपूजनादिखंडनविषय और काशीवासी पंडित जनों का मंडन विषय था उन को वेदप्रमाण से मंडन करना उचित था सो कुछ भी न कर सके क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं इस प्रकरणान्तर में जा गिरते क्यों कि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है ऐसे हुए पश्चात् भी जिस २ ग्रंथान्तर में से जो २ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रंथों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चांहा था वह भी न हो सका पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषण वाची है इस में स्वामीजी का पक्ष विशेषणवाची और काशीस्थ पंडितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था। इस में बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामी जी ने विशेषणवाची पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पंडित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके! सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामी जी ने उस को विशेषण वाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशीनिवासी पंडितों से कुछ भी न बन पड़ा। एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्हों ने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सन्मुख असभ्यता का वचन बोले। क्या स्वामी जी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें! और बुरे वचन बोलनेहारों को न रोकें क्या स्वामी जी का पांच मिनट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों ी बात नहीं थी! और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ाली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में,

कोई भी उन को रोकने हारा न हुआ ! और क्या एक दम उठ के चुप हो के बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ! यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्हों ने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापे खाने में छपा कर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उन की बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामी जी ने उन के कर्मों पर ध्यान न देकर उपेक्षा करके पुनरपि उन को वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी बार काशी जी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादिमूर्त्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो इस पर भी कुछ नहीं करते ! यह भी कितने निश्चय करने बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पंडित लोग पाते अथवा कहीं वेद-शास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख हो के अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामी जी के सामने न होते ! इस से यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामी जी की बात है वही ठीक है और देखो स्वामी जी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिस में सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे सत्य ठहरती है । उस पर पंडित तारा-चरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था उस पर स्वामी जी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पंडित भीमसेन ने छपवा कर कि जिस में स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती जी और बालशास्त्री जी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी प्रसिद्ध किया था उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ क्या अब भी किसी को शंका रह सकती है कि जो २ स्वामी जी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं किन्तु निश्चय करके जानना चाहिये कि स्वामी जी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं। और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि स्वामी जी ने वेद नाम से कहा है वहां २ उन पंडितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामी जी का मत नहीं स्वामी जी मंत्र संहिताओं ही को वेद मानते हैं क्यों कि जो मंत्र संहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण भी हो सकते हैं और मंत्र संहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होनेसे अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्यों कि वे तो स्वतः प्रमाण हैं ॥

ओ३म्।

॥ अथ काशीस्थशास्त्रार्थः ॥

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु। एको दिगम्बरस्सत्यशास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गंगातटे विहरति स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपतवैष्णवादिसंप्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति नाचरणीयं कदाचित् कुतएतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्त्येवं हरद्वारमारभ्य गंगातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्र दयानन्दसरस्वती स्वामी खंडनं कुर्वन्सन् काशीमागत्य दुर्गाकुंडसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः बहुभिः पंडितैः वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः। परंतु क्वापि पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिविधानं न लब्धं प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति ततः काशीराजमहाराजेन बहून् पंडितानाहूय पृष्टं किं कर्तव्यमिति तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थंकृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्य मेवेति पुनः कार्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे १९२६ मंगलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पंडितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिनानिवासः कृतः तत्रागतः। तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम्। वेदानां पुस्तकान्यानीतानि नवा तदा महाराजेनोक्तम्। वेदाः पंडितानां कंठस्थाः संति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवत्यस्तु तावत् पुस्तकानि नानीतानि तदा पंडितरघुनाथप्रसाद

कोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पंडितो वदतु न तु युगपदिति तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तं युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति। तदा ताराचरणेनोक्तम् सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषुप्रामाण्यस्वीकारोस्तीति तदा दयानंदस्वामिनोक्तम्। वेदे पाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयं। नास्ति चेद्वद नास्तीति। तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्। वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परंतु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत्तदा स्वामिनोक्तम्। अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योस्ति तस्मात्स एवादौ कर्तव्यः कुतो वेदोक्तकर्मैव मुख्यमस्त्यतः मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि संति तस्मातेषामपिप्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति। तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्। मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति। स्वामिनोक्तं। यद्वैकिंचनमनुरवदत्तद् भैषजंभेषजतायाइतिसामवेदे* तदा विशुद्धानंदस्वामिनोक्तम्। रचनानुपपतेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति। तदा स्वामिनोक्तं अस्य प्रकरणांतरस्थोयं विचारो न कर्तव्य इति पुनर्विशुद्धानंदस्वामिनोक्तं वदैव त्वंयदि जानासीति। तदा दयानंदस्वामिना प्रकरणांतरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम्। कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति। तदा विशुद्धानंदस्वामिनोक्तम्। कंठस्थं नास्ति चेत शास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतः काशीनगरेचेति। तदा स्वामिनोक्तम्। भवतः सर्वं कंठस्थं वर्त्ततइति। तदा विशुद्धानंदस्वामिनोक्तं ममसर्वं कंठस्थं वर्तत इति तदा स्वामिनोक्तम्। धर्मस्य किंस्वरूपमिति। तदाविशुद्धानंदस्वामिनोक्तम् वेदप्रतिपाद्यःप्रयोजनवदर्थोधर्म इति। स्वामिनोक्तम्। इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यस्य

* इदं पण्डितानामेव मतमं गोकृत्योक्तमतोनेदं स्वामिनो मतमितिवेद्यम्।

प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्। चोदनालक्षणोऽर्थोधर्म इति जैमिनिसूत्रमिति *तदा स्वामिनोक्तम् चोदना का चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत्। तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्। तदा स्वामिनोक्तमस्तु ताव-द्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किंच धर्मस्य कति लक्षणानि भवंति वदतु भवानिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमेकमेव लक्षणं धर्मस्येति। तदा स्वामिनोक्तम् किंच तदिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्। तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्। धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् कानि तानि लक्षणानीति। तदा स्वामिनोक्तम्। धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणमिति। मनुस्मृतेः श्लोकोऽस्ति †तदा बालशास्त्रिणोक्तम्। अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रंपठित-वानिति। तदा दयानन्दस्वामिनोक्तं त्वमधर्म्मस्यलक्षणानि वदेति। तदा बालशास्त्रिणा किमपिनोक्तं तदा बहुभिर्युगपत्पृष्टं प्रतिमाशब्दो वेदे नास्ति किमिति। तदा स्वामिनोक्तम् प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति तदा तैरुक्तं क्वास्ती-ति। तदा स्वामिनोक्तम् सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति तदा तैरुक्तं किंच तद्वच-नमिति तदास्वामिनोक्तम्। देवतायतनानि कंपंते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्या-दीति। तदा तैरुक्तम्। प्रतिमाशब्दस्तु वेदे ‡ वर्त्तते भवान् कथं खण्डनं करोति तदा स्वामिनोक्तम् प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति॥

* इदन्तु सूत्रमस्तिनेयं श्रुतिर्वा स्मृतिस्सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानिस्तस्य कुतो न पराजय इति वेद्यम्।

† अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानिर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम्।

‡ अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रंथे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम्।

तदातैरुक्तं यस्मिन्प्रकरणेयं मंत्रोस्ति तस्य कोऽर्थ इति तदा स्वामिनोक्तम् अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिंद्रमित्यादयस्तत्रैव सर्वे मूलमंत्रा लिखिता एतेषां मध्यात्प्रतिमंत्रेण त्रिस्त्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पंचपंचाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता यस्मिन्मंत्रे प्रतिमा शब्दोस्ति स मंत्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपितु ब्रह्मलोकविषय एव तद्यथा स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शांतिरुक्ता ततो भूमेश्चेतिमर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यांतरिक्षस्य शांतिरुक्ता ततो दिवश्च शांतिविधानमुक्तम्। ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति। तदा बालशास्त्रिणोक्तम्। यस्यां यस्यां दिशि या२ देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शांतिकरणेन द्रष्टृविघ्नोपशांतिर्भवतीति तदा स्वामिनोक्तमिदं तु सत्यं परंतु विघ्नदर्शयिता कोस्तीति। तदा बालशास्त्रिणोक्तमिंद्रियाणि दर्शयितॄणीति। तदा स्वामिनोक्तमिंद्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवंति न तु दर्शयितॄणि परंतु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र सशब्दवाच्यः कोस्तीति। तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम्। तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तमन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति। तदा स्वामिनोक्तम्भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किं दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मंत्रस्यार्थं वदेति तदा शिवसहायेन मौनं कृतम्। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् वेदाः कस्माज्जाता इति। तदा स्वामिनोक्तम् वेदा ईश्वराज्जाता इति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्। कस्मादीश्वराज्जाताः किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदांतशास्त्रोक्ताद्वेति। तदा स्वामिनोक्तम्। ईश्वरा बहवो भवंति किमिति तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमीश्वरस्त्वेक एव परंतु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता

इति तदा स्वामिनोक्तम् । सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्दे ।जाता इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् कोऽस्ति सम्बन्धः किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति । तदा स्वामिनोक्तं कार्यकारणभाव सम्बन्धश्चेति तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं मनोब्रह्मेत्युपासीत। आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति । तदा स्वामिनोक्तं यथामनोब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु*दृश्यते तथा पाषाणादिब्रह्मेत्युपासीतेतिवचनं क्वापि वेदे न दृश्यते पुनः कथं ग्राह्यंभवेदिति । तदा माधवाचार्येणोक्तम् । उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्त्तेसꣳ सृजेथामयञ्चेति । मंत्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति तदा स्वामिनोक्तं वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति तदा माधवाचार्येणोक्तम् पाषाणादिमूर्त्ति पूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति । तदा स्वामिनोक्तम् पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्ति वाचीवर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्ति पूजनग्रहणं सम्भवति यदि शङ्कास्ति तर्हि नैरुक्तमस्यमंत्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति ततोमाधवाचार्येणोक्तं पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति । तदा स्वामिनोक्तं पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परंतु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रंथानांग्रहणं न भवति कुतः पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति ।तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं एतस्यमहतोभूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदोयजुर्वेदः सामवेदोथर्व्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीत्यत्रबृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्यसर्वस्यप्रामाण्यं वर्त्तते नवेति तदास्वामिनोक्तं अस्त्येव प्रामाण्यमिति तदाविशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति ।

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति बोध्यम् ।

तदा स्वामिनोक्तं सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति तदा स्वामिनोक्तम् पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्तव्य इति तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य द्वे पत्रे *निस्सारिते ऽत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति। तदा स्वामिनोक्तम् कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति। ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति। तदा स्वामिनोक्तम् पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीतिविशेषणमिति। तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम् ब्राह्मणानि नवीनानि भवंति किमिति। तदा स्वामिनोक्तम् नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदितिविशेषणार्थः तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्। इतिहासशब्दव्यवधानेन कथंविशेषणम्भवेदिति। तदा स्वामिनोक्तम् अयं नियमोस्ति किंव्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति। अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणोनेति दूरस्थस्य देहिनोविशेषणानि गीतायां कथम्भवंति व्याकरणेपि नियमो नास्ति समीपस्थमेव विशेषणम्भवेन्न दूरस्थमिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम् इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति। तदा स्वामिनोक्तमन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणं तद्यथा इतिहासः पुराणःपंचमोवेदानांवेदा इत्युक्तम्, तदा वामनाचार्य्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम् तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् † यदि वेदेष्वयं पाठो न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययं पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवतां पराजयश्चेयं प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तं तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति तदा स्वामिनोक्तम्

* इदमपि पण्डितानांमतं नैवस्वामिन इति वेद्यम्॥

† इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमिते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति च

इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता नवेति। तदा बालशास्त्रिणोक्तमेकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति। तदा स्वामिनोक्तम्। कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति बालशास्त्रिणा। किमपि नोक्तम् मन्येनापि चेति। तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य* निस्सार्य्य सर्वेषां पण्डितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तं तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे द्वे दत्ते तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् तत्रेदं वचनं वर्त्तते। दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः। इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति। अस्यायमर्थः पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्यैव वेदः पुराणविद्यावेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या कुत एतदन्यच्चर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं नचोपनिषदाम्। तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् पुराणविद्यावेदोपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति क्वाप्येवं वेदेषु † पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोभूत्। ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः। एवं च तेषामयमाशयः कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति। अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति। दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निस्सृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत्। पाषाणादिमूर्त्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तं येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठमालाधारणादिषु त्रिपुंड्रोर्ध्वपुंड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति॥

* इदमपि तन्मतमेव नैव स्वामिन इति † इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति

॥ भाषार्थ ॥

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्य शास्त्रों के वेत्ता हैं उन्हों ने संपूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है सो ऐसा सत्य शास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि पाषाणादि मूर्ति-पूजन शैव शाक्त गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष तुलसी माला त्रिपुंड्रादिधारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है इस से ये सब मिथ्या ही हैं। कदापि इन का आचरण न करना चाहिये क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है।

इस हेतु से उक्त स्वामी जी हरद्वार से लेकर सर्वत्र इस का खंडन करते हुए काशी में आके दुर्गाकुंड के समीप आनन्द बाग में स्थित हुए उन के आने की धूम मची बहुत से पंडितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरंभ किया परन्तु पाषाणादिमूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला बहुधा करके इस के पूजन में आग्रह बहुतों को है॥

इस से काशीराज महाराज ने बहुत से पंडितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी प्रकार से दयानन्द सरस्वतीस्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन हो सके करना चाहिये।

निदान कार्त्तिक सुदि १२ सं० १९ २६ मंगलवार को महाराजा काशीनरेश बहुत से पंडितों को साथ लेकर जब स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्दस्वामी जी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं

महाराजने कहा कि वेद संपूर्ण पंडितों को कंठस्थ हैं पुस्तकों का क्या प्रयोजन है तब दयानन्द सरस्वती जी ने कहा कि पुस्तकों के विना पूर्वापरप्रकरण का विचार ठीक२ नहीं हो सकता भला पुस्तक तो नहीं आए तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा॥

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हो हम लोग उस का मण्डन करेंगे॥

पुनः स्वामीजीने कहा कि जो कोई आपलोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे।

पंडित रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने भी यह नियम किया कि स्वामी जी से एक २ पंडित विचार करे।

पुनः सब से पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामी जी से विचार के हेतु सन्मुख हुए स्वामी जी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं उन्हों ने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण हो है* इस पर स्वामी जीने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादिमूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं यदि हो तो दिखाइये और जो नहीं हो तो कहिये किनहींहै॥

पण्डित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उस के प्रति क्या कहना चाहिये इस पर स्वामी जीने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा वेदों का विचार मुख्य है इस निमित्त से इस का विचार पहिले ही करना चाहिये क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है और मनुस्मृति आदि भी वेद मूलक हैं इस से इन का भी प्रमाण है क्योंकि जो २ वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उन का प्रमाण नहीं होता ॥

पण्डित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है ॥ † इस पर स्वामी जी ने कहा कि जो २ मनु जी ने कहा है सो २ औषधों का भी औषध है ऐसा साम वेद के ब्राह्मण में कहा है ॥

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान प्रतिपाद्य प्रधान जगत् का कारण नहीं व्यास जी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है इस पर विचार करना न चाहिये। फिर विशुद्धानन्दस्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो इस पर स्वामी जी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी इस से न कहा जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देख कर कहा जा सकता है।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशीनगर में शास्त्रार्थ को क्यों उद्यत हुए। इस पर स्वामीजीने कहा कि क्या आप को सब कण्ठाग्र है।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हम को कण्ठस्थ है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है यही धर्म्म कहलाता है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है इस का क्या प्रमाण श्रुति स्मृति कहिये।

---

* इस से यह समझना कि स्वामी जी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।

† यह कहना उन पण्डितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मंत्र भाग ही को वेद मानते हैं।

विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि जो चोदनालक्षणअर्थ है सो धर्म कहलाता है यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामी जी ने कहा कि यह तो सूत्र है यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है ।

जब इस में विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा तब स्वामी जी ने कहाकि अच्छा आप ने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैंकहिये

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वह कैसा है तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा । तब स्वामी जी ने कहा कि धर्म के तो दश लक्षण हैं आप एक ही क्यों कहते हैं तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन लक्षण हैं ।

इस पर स्वामी जी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि । धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ और विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०ये दश धर्म के लक्षण हैं फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं । तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है इस पर स्वामी जी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये तब बालशास्त्री जी ने कुछ भी उत्तर न दिया । फिर बहुत से पंडितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है इस पर स्वामी जी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह है देवता के स्थान कंपायमान और प्रतिमा हंसती है हैं इत्यादि * फिर उन लोगों ने कहा प्रतिमा शब्द वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादिमूर्ति पूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इस का क्या अर्थ है ।

तब उनलोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मंत्र है उसप्रकरण का क्या अर्थहै।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह अर्थ है अथ अद्भुत शान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये इन्द्र इत्यादि सब मूल मंत्र

* यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह प्रक्षिप्त है क्यों कि वेदों से विरुद्ध है ।

यहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं इन में से प्रति मंत्र करके तीन ३ हजार आहुति करनी चाहिये इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच २ आहुति करनी चाहिये ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है इस क्रम करके अद्भुतशान्ति का विधान किया है जिस मंत्र में प्रतिमा शब्द है सो मंत्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है सो ऐसा है कि जब विघ्न करता देवता पूर्व दिशा में वर्त्तमान होवे इत्यादि मंत्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कह कर फिर दक्षिण दिशा पश्चिम दिशा और उत्तर दिशा इस के अनन्तर भूमि की शान्ति कह कर मृत्यु लोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कह के इस के अनन्तर स्वर्ग लोक फिर परम स्वर्ग अर्थात् ब्रह्म लोक की शान्ति कही है इस पर सब चुप रहे फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस २ दिशा में जो २ देवता है उस २ की शान्ति करने से अद्भुत देखने वालों के विघ्न की शान्ति होती है इस पर स्वामी जी ने कहा कि यह तो सत्य है परंतु इस प्रकार में विघ्न दिखाने वाला कौन है तब बालशास्त्री ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखने वाली हैं दिखाने वाली नहीं परंतु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्तऽथे त्यत्र इत्यादि मंत्रों में स शब्द का वाच्यार्थ क्या है तब बालशास्त्री जी ने कुछ न कहा फिर पण्डित शिवसहाय जी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमन शान्ति कर ने से फल इस मंत्र करके कहा जाता है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मंत्र का अर्थ तो कहिये तब शिवसहाय जी चुप हो रहे फिर विशुद्धानन्द स्वामी जीने कहा कि वेद किस से उत्पन्न हुए हैं इस पर स्वामी जी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर वा योगशास्त्रप्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से इत्यादि । इस पर स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर बहुत से हैं। तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर तो एकही है परंतु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। इस पर स्वामी जी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या संबन्ध है क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसंबन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्यसंबन्ध है इत्यादि । इस पर स्वामी जी ने कहा कि कार्य्यकारण भाव संबन्ध है । फिर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्म बुद्धि कर के प्रत्येक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का भी ग्रहण करना चाहिये ।

इस पर स्वामी जी ने कहा जैसे मनो ब्रह्मेत्युपासीत । आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत इत्यादि वचन * वेदों में देखने में आते हैं वैसे पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देखपड़ता फिर क्यों कर इस का ग्रहण हो सकता है ।

तब माधवाऽचार्य्य ने कहा कि उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहित्वमिष्टापूर्त्ते संसृजेथामयञ्चेति इस मंत्र में पूर्त्त शब्द से किस का ग्रहण है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग, और आराम का ग्रहण है।

माधवाचार्य्य ने कहा कि इस से पाषाणादि मूर्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पूर्त्त शब्द पूर्त्ति का वाचक है इस से कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता यदि शंका होतो इस मंत्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये।

तब माधवाऽचार्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत से जगह वेदों में है परंतु पुराण शब्द से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं हो सकता क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि वृहदारण्यक उपनिषद् के इस मंत्र में कि (एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति) यह सब जो पठित है इस का प्रमाण है वा नहीं।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि हां प्रमाण है ।

फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सब का प्रमाण आया।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है

इस पर स्वामी जी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इस का विचार हो।

माधवाचार्य्य ने वेदों के दो पत्रे † निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ।

स्वामी जी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये।

तब माधवाचार्य्य ने यह पढ़ा । ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति ।

---

* यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामी जी का नहीं क्योंकि स्वामी जी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते ।

† यह भी उन्हीं का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि यह गृह्यसूत्र का पाठ है ।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं।

तब बालशास्त्री जी आदिने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शंका भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि। अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी विशेषण क्या नहीं है और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामी जी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है इस से क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है सुनिये। इतिहास पुराणः पंचमो वेदानां वेद इत्यादि में कहा है।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठही कहीं भी नहीं है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि यदि वेद में यह पाठ*न होवे तो हमारापराजय हो और जो होतो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो तब सब चुप हो रहे।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्म संज्ञा करी है वा नहीं।

तब बालशास्त्री जी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है।

इस पर स्वामी जी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है यदि जानते हो तो इस के उदाहरण पूर्वक समाधान कहो।

बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा माधवाचार्य ने दो पत्रे † वेदों के निकाल कर सब पंडितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां यज्ञ के

* यह उन्हीं पंडितों के मतानुसार कहा है किन्तु स्वामी जी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते।

† ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं।

समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है य पुराण शब्द किस का विशेषण है ।

स्वामी जी ने कहा कि पढ़ो इस में किस प्रकार का पाठ है जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्द जी ने पत्रे उठा के स्वामी जी की ओर करके कहा कि तुमही पढ़ो ।

स्वामी जी ने कहा कि आप ही इस का पाठ कीजिये तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा मैं ऐनक के विना विना पाठ नहीं कर सकता ऐसा कहके वे पत्रे उठा कर विशुद्धानन्द स्वामी जी ने दयानन्द स्वामी जी के हाथ में दिये ।

इस पर स्वामी जी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे इस में अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्योंही स्वामी जी यह उत्तर कहा चाहते थे "कि पुरानी जो विद्या है उसे पुराण विद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्यावेद कहाता है इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा इसलिये यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है औरों का नहीं पुराणी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है इस से ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रंथों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि ब्रह्मवैवर्त्तादि अठारह १८ ग्रन्थ पुराण हैं सो तो वेद में*कहीं ऐसा पाठ नहीं है इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं होसकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि विशुद्धानन्दस्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हम को विलंब होता है हम जाते हैं तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय†हुआ परन्तु जो दयानन्द स्वामी जी के ४ प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उन का पराजय हुआ ॥

* यह पंडितों के मतानुसार से कहा है यह स्वामी जी का मत नहीं है

† क्या किसी को भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय होसकता है कि स्वामी जी का पराजय और काशीस्थ पंडितों का विजय हुआ । किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का विजय हुआ और काशिस्थों का नहीं क्योंकि स्वामी जी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्यों कर न होवे काशीस्थपण्डितों का पुराण और तंत्रोक्तमत जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजादि है उन का पराजय होना कौन रोक सकता है यह निश्चित है कि असत्यपक्ष वालों का सदा पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है॥

वेदाङ्गप्रकाश:

पाणिनीय अष्टाध्यायी के एक २ प्रकरण को पृथक् २ करके भाषावृत्ति और विवरण सहित छापा है। यह अपूर्वग्रंथ व्याकरण के पढ़ने वालों के लिये बहु उपयोगी है इस में महाभाष्य के अनुकूल शंका समाधान भी किये हैं। इस भाग इस प्रकार हैं :-

(१) सन्धिविषय-व्याकरण का सन्धिप्रकरण इस में लिखा गया है

(२) नामिक-इस में षट्लिङ्ग का विषय लिखा गया है

(३) कारकीय-कारक का विषय

(४) सामासिक-समास का विषय

(५) स्त्रैणताद्धित-स्त्रीप्रत्यय और तद्धितप्रकरण

(६) अव्ययार्थ-इस में अव्यय, उन का अर्थ और उदाहरण लिखे गये हैं

(७) आख्यातिक-इस में आख्यात का विषय है इस को व्याख्या बहुत उत्तम रीति से लिखी गई है। व्याकरण में यह विषय बड़ा कठिन है परन्तु इस ग्रन्थ के बनने से वैदिक और लौकिक सब सूत्र सुगम हो गये

(८) सौवर-वेदादिशास्त्रों में जो उदात्तादि स्वर हैं उन का व्याकरणद्वारा विचार करना पूर्वकाल में लोग सम्यक् रीति से जानते थे सो प्रचार अब सहस्रों वर्ष से लुप्तप्राय हो रहा है इस से लोग व्याकरण के अनुसार उन स्वरों को नहीं जान सकते हैं इस अभाव को दूर करने के लिये यह अपूर्व ग्रन्थ रचा गया है। इस ग्रन्थ से लोगों को स्वरविषय अच्छी प्रकार आ सकता है। व्याकरण पढ़ने वाले विद्यार्थियों और वेद का पाठ करने वालों को एक २ पुस्तक अवश्य रखना चाहिये

(९) पारिभाषिक-महाभाष्य में पतंजलि जीने जितनी परिभाषा लिखी हैं सो इस पुस्तक में एकत्र करके भाषा में सब का विवरण अर्थात् बहुत उत्तम प्रकार से उदाहरण प्रत्युदाहरण और शंका समाधान आदि लिखे हैं

इन के सिवाय अन्य पुस्तकों का सूचीपत्र मंगाने से भेजा जा सकता है

पत्ते से भेजें :—

मुनशी समर्थदान
प्रबन्धकर्त्ता वैदिकयंत्रालय
प्रयाग

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु परिग्रहण क्रमांक ... 1647
दयानन्द महिला महावि